जन्म शताब्दी पुस्तकमाला- 28

गायत्री उपासना की सफलता की तीन शर्तें

(प्रवचन)

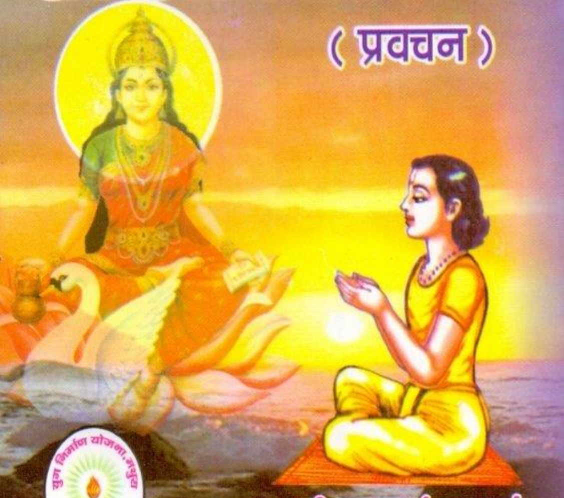

- श्रीराम शर्मा आचार्य

गायत्री उपासना की सफलता की तीन शर्तें

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ बोलें-

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

मित्रो ! हमारा सत्तर वर्ष का संपूर्ण जीवन सिर्फ एक काम में लगा है और वह है-भारतीय धर्म और संस्कृति की आत्मा की शोध। भारतीय धर्म और संस्कृति का बीज है-गायत्री मंत्र। इस छोटे से चौबीस अक्षरों के मंत्र में वह ज्ञान और विज्ञान भरा हुआ पड़ा है, जिसके विस्तार में भारतीय तत्त्वज्ञान और भारतीय नृतत्व विज्ञान दोनों को खड़ा किया गया है। ब्रह्माजी ने चार मुखों से चार चरण गायत्री का व्याख्यान चार वेदों के रूप में किया। वेदों से अन्यान्य धर्मग्रंथ बने। जो कुछ भी हमारे पास है, इस सबका मूल जड़ हम चाहें तो गायत्री मंत्र के रूप में देख सकते हैं। इसलिए इसका नाम गुरुमंत्र रखा गया है, बीजमंत्र

रखा गया है। बीजमंत्र के नाम से, गायत्री मंत्र के नाम से इसी एक मंत्र को जाना जा सकता है और गुरुमंत्र इसे कहा जा सकता है। हमने प्रयत्न किया कि सारे भारतीय धर्म और विज्ञान को समझने की अपेक्षा यह अच्छा है कि इसके बीज को समझ लिया जाए, जैसे कि विश्वामित्र ने तप करके इसके रहस्य और बीज को जानने का प्रयत्न किया। हमारा पूरा जीवन इसी एक क्रिया-कलाप में लग गया। जो बचे हुए जीवन के दिन हैं, उसका भी हमारा प्रयत्न यही रहेगा कि हम इसी की शोध और इसी के अन्वेषण और परीक्षण में अपनी बची हुई जिंदगी को लगा दें।

बहुत सारा समय व्यतीत हो गया। अब लोग जानना चाहते हैं कि आपने इस विषय में जो शोध की, जो जाना, उसका सार-निष्कर्ष हमें भी बता दिया जाए। बात ठीक है, अब हमारे महाप्रयाण का समय नजदीक चला आ रहा है तो लोगों का यह पूछताछ करना सही है कि हर आदमी इतनी शोध नहीं कर सकता। हर आदमी के लिए इतनी जानकारी प्राप्त

करना तो संभव भी नहीं है। हमारा सार और निष्कर्ष हर आदमी चाहता है कि बताया जाए। क्या करें? क्या समझा आपने? क्या जाना? अब हम आपको यह बताना चाहेंगे कि गायत्री मंत्र के ज्ञान और विज्ञान में जिसकी कि व्याख्यास्वरूप ऋषियों ने सारे का सारा तत्त्वज्ञान खड़ा किया है, क्या है?

गायत्री को त्रिपदा कहते हैं। त्रिपदा का अर्थ है–तीन चरण वाली, तीन टाँगवाली। तीन टुकड़े इसके हैं, जिनको समझ करके हम गायत्री के ज्ञान और विज्ञान की आधारशिला को ठीक तरीके से जान सकते हैं। इसका एक भाग है विज्ञान वाला पहलू। विज्ञान वाले पहलू में आते हैं–तत्त्वदर्शन, तप, साधना, योगाभ्यास, अनुष्ठान, जप, ध्यान आदि। यह विज्ञान वाला पक्ष है। इससे शक्ति पैदा होती है। गायत्री मंत्र का जप करने से, उपासना और ध्यान करने से उसके जो माहात्म्य बताए गए हैं कि इससे यह लाभ होता है, अमुक लाभ होते हैं, अमुक कामनाएँ पूरी होती हैं। अब यह देखा जाए कि यह

कैसे पूरी होती है और कैसे पूरी नहीं होती? कब यह सफलता मिलती है और कब नहीं मिलती? किसी भी बीज को पैदा करने के लिए तीन चीजों की आवश्यकता होती है। भूमि उसके पास होनी चाहिए। भूमि के अलावा खाद और पानी का इंतजाम होना चाहिए। अगर ये तीनों चीजें उसके पास न होंगी तब फिर मुश्किल है। तब फिर वह बीज पल्लवित होगा कि नहीं, कहा नहीं जा सकता। गायत्री मंत्र के बारे में भी यही तीन बातें हैं कि यदि गायत्री मंत्र के साथ तीन चीजें मिला दी जाएँ या किसी भी आध्यात्मिक उपासना के साथ मिला दी जाएँ तो उसके ठीक परिणाम होने संभव हैं। अगर यह तीन चीजें नहीं मिलाई जाएँगी, तब फिर यही कहना पड़ेगा कि इसमें सफलता की आशा कम है।

गायत्री उपासना के संबंध में हमारा लंबे समय का जो अनुभव है वह यह है कि जप करने की विधियाँ और कर्मकांड तो वही हैं जो सामान्य पुस्तकों में लिखे हुए हैं या बड़े से लेकर छोटे लोगों ने किए

हैं। किसी को फलित होने और किसी को न फलित होने का मूल कारण यह है कि उन तीन तत्त्वों का समावेश करना लोग भूल जाते हैं जो किसी भी उपासना का प्राण हैं। उपासना के साथ एक तथ्य यह जुड़ा हुआ है कि अटूट श्रद्धा होनी चाहिए। श्रद्धा की एक अपने आप में शक्ति है। बहुत सारी शक्तियाँ हैं–जैसे बिजली की शक्ति है, भाप की शक्ति है, आग की शक्ति है, उसी तरीके से श्रद्धा की भी एक शक्ति है। पत्थर में से देवता पैदा हो जाते हैं, झाड़ी में से भूत पैदा हो जाता है, रस्सी में से साँप हो जाता है और न जाने क्या-क्या हो जाता है श्रद्धा के आधार पर। अगर हमारा और आपका किसी मंत्र के ऊपर, जप उपासना के ऊपर अटूट विश्वास है, प्रगाढ़ निष्ठा और श्रद्धा है तो मेरा अब तक का अनुभव यह है कि उसको चमत्कार मिलना चाहिए और उसके लाभ सामने आने चाहिए। जिन लोगों ने श्रद्धा से विहीन उपासनाएँ की हैं, श्रद्धा से रहित केवल मात्र कर्मकांड संपन्न किए हैं, केवल जीभ की नोक से जप किए हैं और

उँगलियों की सहायता से मालाएँ घुमाई हैं, लेकिन मन में वह श्रद्धा न उत्पन्न कर सके, विश्वास उत्पन्न न कर सके, ऐसे लोग खाली रहेंगे। बहुत सारा जप करते हुए भी अगर अटूट श्रद्धा और विश्वास के साथ उपासनाएँ की जाएँ तो यह एक ही पहलू ऐसा है जिसके आधार पर हम यह आशा कर सकते हैं कि हमारे अच्छे परिणाम निकलने चाहिए और उपासना को पूरा-पूरा लाभ देना चाहिए। यह एक पक्ष हुआ।

दूसरा, उपासना को सफल बनाने के लिए परिष्कृत व्यक्तित्व का होना नितांत आवश्यक है। परिष्कृत व्यक्तित्व का मतलब यह है कि आदमी चरित्रवान हो, लोकसेवी हो, सदाचारी हो, संयमी हो, अपने व्यक्तिगत जीवन को श्रेष्ठ और समुन्नत बनाने वाला हो। अब तक ऐसे ही लोगों को सफलताएँ मिली हैं। अध्यात्म का लाभ स्वयं पाने और दूसरों को दे सकने में केवल वही साधक सफल हुए हैं जिन्होंने कि जप, उपासना के कर्मकांडों के सिवाय अपने व्यक्तिगत जीवन को शालीन, समुन्नत, श्रेष्ठ

और परिष्कृत बनाने का प्रयत्न किया है। संयमी व्यक्ति, सदाचारी व्यक्ति जो भी जप करते हैं, उपासना करते हैं उनकी प्रत्येक उपासना सफल हो जाती है। दुराचारी आदमी, दुष्ट आदमी, नीच पापी और पतित आदमी भगवान का नाम लेकर यदि चाहें तो पार नहीं हो सकते। भगवान का नाम लेने का परिणाम यह होना चाहिए कि आदमी का व्यक्तित्व सही हो और वह शुद्ध बने। अगर व्यक्ति को शुद्ध और समुन्नत बनाने में रामनाम सफल नहीं हुआ तो जानना चाहिए कि उपासना की विधि में बहुत भारी भूल रह गई और नाम के साथ में काम करने वाली बात को भुला दिया गया। परिष्कृत व्यक्तित्व उपासना का दूसरा वाला पहलू है, गायत्री उपासना के संबंध में अथवा अन्यान्य उपासनाओं के संबंध में।

तीसरा, हमारा अब तक का अनुभव यह है कि उच्चस्तरीय जप और उपासनाएँ तब सफल होती हैं जबकि आदमी का दृष्टिकोण और महत्त्वाकांक्षाएँ भी ऊँची हों। घटिया उद्देश्य लेकर के, निकृष्ट

कामनाएँ और वासनाएँ लेकर के अगर भगवान की उपासना की जाए और देवताओं का द्वार खटखटाया जाए, तो देवता सबसे पहले कर्मकांडों की विधि और विधानों को देखने की अपेक्षा यह मालूम करने की कोशिश करते हैं कि उसकी उपासना का उद्देश्य क्या है? किस काम के लिए करना चाहता है? अगर उन्हीं कामों के लिए जिसमें कि आदमी को अपनी मेहनत और परिश्रम के द्वारा कमाई करनी चाहिए, उसको सरल और सस्ते तरीके से पूरा कराने के लिए देवताओं का पल्ला खटखटाता है तो वे उसके व्यक्तित्व के बारे में समझ जाते हैं कि यह कोई घटिया आदमी है और घटिया काम के लिए हमारी सहायता चाहता है। देवता भी बहुत व्यस्त हैं। देवता सहायता तो करना चाहते हैं, लेकिन सहायता करने से पहले यह तलाश करना चाहते हैं कि हमारा उपयोग कहाँ किया जाएगा? किस काम के लिए किया जाएगा? यदि घटिया काम के लिए उसका उपयोग किया जाने वाला है, तो वे कदाचित ही

कभी किसी के साथ सहायता करने को तैयार होते हैं। ऊँचे उद्देश्यों के लिए देवताओं ने हमेशा सहायता की है।

मंत्रशक्ति और भगवान की शक्ति केवल उन्हीं लोगों के लिए सुरक्षित रही है जिनका दृष्टिकोण ऊँचा रहा है। जिन्होंने किसी अच्छे काम के लिए, ऊँचे काम के लिए भगवान की सेवा और सहायता चाही है, उनको बराबर सेवा और सहायता मिली है। इन तीनों बातों को हमने प्राणपण से प्रयत्न किया और हमारी गायत्री उपासना में प्राणसंचार होता चला गया। प्राणसंचार अगर होगा तो हर चीज प्राणवान और चमत्कारी होती चली जाती है और सफल होती जाती है। हमने अपने व्यक्तिगत जीवन में चौबीस लाख के चौबीस साल में चौबीस महापुरश्चरण किए। जप और अनुष्ठानों की विधियों को संपन्न किया। सभी के साथ जो नियमोपनियम थे, उनका पालन किया। यह भी सही है, लेकिन हर एक को यह ध्यान रहना चाहिए कि हमारी उपासना में कर्मकांडों का, विधि-विधानों का

जितना ज्यादा स्थान है उससे कहीं ज्यादा स्थान इस बात के ऊपर है कि हमने उन तीन बातों को जो आध्यात्मिकता की प्राण समझी जाती हैं, उन्हें पूरा करने की कोशिश की है। अटूट श्रद्धा और अडिग विश्वास गायत्री माता के प्रति रख करके और उसकी उपासना के संबंध में अपनी मान्यता और भावना रख करके प्रयत्न किया है और उसका परिणाम पाया है। व्यक्तित्व को भी जहाँ तक संभव हुआ है परिष्कृत करने के लिए पूरी कोशिश की है। एक ब्राह्मण को और एक भगवान के भक्त को जैसा जीवन जीना चाहिए, हमने भरसक प्रयत्न किया है कि उसमें किसी तरह से कमी न आने पाए। उसमें पूरी-पूरी सावधानी हम बरतते रहे हैं। अपने आप को धोबी के तरीके से धोने में और धुनिये के तरीके से धुनने में हमने आगा-पीछा नहीं किया है। यह हमारी उपासना को फलित और चमत्कृत बनाने का एक बहुत बड़ा कारण रहा है। उद्देश्य हमेशा से ऊँचा रहे। उपासना हम किस काम के लिए करते हैं, हमेशा यह ध्यान

बना रहा। पीड़ित मानवता को ऊँचा उठाने के लिए, देश, धर्म, समाज और संस्कृति को समुन्नत बनाने के लिए हम उपासना करते हैं, अनुष्ठान करते हैं। भगवान की प्रार्थना करते हैं। भगवान ने देखा कि किस नीयत से यह आदमी कर रहा है–भगीरथ की नीयत को देखकर के गंगा जी स्वर्ग से पृथ्वी पर आने के लिए तैयार हो गई थीं और शंकर भगवान उनकी सहायता करने के लिए तैयार हो गए थे। हमारे संबंध में भी ऐसा ही हुआ। ऊँचे उद्देश्यों को सामने रख करके चले तो दैवी शक्तियों की भरपूर सहायता मिली। हमारा अनुरोध यह है कि जो कोई भी आदमी यह चाहते हों कि हमको अपनी उपासना को सार्थक बनाना है तो उन्हें इन तीनों बातों को बराबर ध्यान में रखना चाहिए।

हम देखते हैं कि अकेला बीज बोना सार्थक नहीं हो सकता। उससे फसल नहीं आ सकती। फसल कमाने के लिए बीज–एक, भूमि–दो और खाद–पानी तीन, इन तीनों चीजों की जरूरत है। निशाना लगाने के लिए बंदूक–एक, कारतूस–दो और

निशाना लगाने वाले का अभ्यास-तीन ये तीनों होंगी तब बात बनेगी। मूर्ति बनाने के लिए पत्थर-एक, छेनी-हथौड़ा दो और मूर्ति बनाने की कलाकारिता तीन। लेखन-कार्य के लिए कागज, स्याही और शिक्षा तीनों चीजों की जरूरत है। मोटर चलाने के लिए मोटर की मशीन, तेल और ड्राइवर तीनों चीजों की जरूरत है। इसी तरीके से उपासना के चमत्कार अगर किन्हीं को देखने हों, उपासना की सार्थकता की परख करनी हो तो इन तीनों बातों को ध्यान में रखना पड़ेगा जो हमने अभी निवेदन किया-उच्चस्तरीय दृष्टिकोण, परिष्कृत व्यक्तित्व और अटूट श्रद्धा-विश्वास। इन तीनों को मिलाकर के जो कोई भी आदमी उपासना करेगा, निश्चयपूर्वक और विश्वासपूर्वक हम कह सकते हैं कि आध्यात्मिकता के तत्त्वज्ञान का जो कुछ भी माहात्म्य बताया गया है कि आदमी स्वयं लाभान्वित होता है, समर्थ बनता है, शक्तिशाली बनता है, शांति पाता है, स्वर्ग-मुक्ति जैसा लाभ प्राप्त करता है और दूसरों की सेवा-सहायता करने में समर्थ होता है सही है।

गायत्री मंत्र के संबंध में हम यही प्रयोग और परीक्षण आजीवन करते रहे और पाया कि गायत्री मंत्र सही है, शक्तिमान है। सब कुछ उसके भीतर है, लेकिन है तभी जब गायत्री मंत्र के बीज को तीनों चीजों से समन्वित किया जाए। उच्चस्तरीय दृष्टिकोण, अटूट श्रद्धा-विश्वास और परिष्कृत व्यक्तित्व यह जो करेगा पूरी सफलता पाएगा। हमारे अब तक के गायत्री उपासना संबंधी अनुभव यही हैं कि गायत्री मंत्र के बारे जो तीनों बातें कही जाती हैं पूर्णत: सही हैं। गायत्री को कामधेनु कहा जाता है, यह सही है। गायत्री को कल्पवृक्ष कहा जाता है, यह सही है। गायत्री को पारस कहा जाता है, इसको छूकर के लोहा सोना बन जाता है, यह सही है। गायत्री को अमृत कहा जाता है, जिसको पीकर के अजर और अमर हो जाते हैं, यह भी सही है। यह सब कुछ सही उसी हालत में है जबकि गायत्री रूपी कामधेनु को चारा भी खिलाया जाए, पानी पिलाया जाए, उसकी रखवाली भी की जाए। गाय को चारा आप

खिलाएँ नहीं और दूध पीना चाहें तो यह कैसे संभव होगा ? पानी पिलाएँ नहीं ठंढ से उसका बचाव करें नहीं, तो कैसे संभव होगा ? गाय दूध देती है, यह सही है, लेकिन साथ-साथ में यह भी सही है कि इसको परिपुष्ट करने के लिए, दूध पाने के लिए उन तीन चीजों की जरूरत है जो कि मैंने अभी आप से निवेदन किया।

यह विज्ञान पक्ष की बात हुई। अब ज्ञानपक्ष की बात आती है। यह मेरा ७० वर्ष का अनुभव है कि गायत्री के तीन पाद-तीन चरण में तीन शिक्षाएँ भरी हैं और ये तीनों शिक्षाएँ ऐसी हैं कि अगर उन्हें मनुष्य अपने व्यक्तिगत जीवन में समाविष्ट कर सके तो धर्म और अध्यात्म का सारे का सारा रहस्य और तत्त्वज्ञान का उसके जीवन में समाविष्ट होना संभव है। तीन पक्ष त्रिपदा गायत्री हैं-(१) आस्तिकता, (२) आध्यात्मिकता, (३) धार्मिकता। इन तीनों को मिला करके त्रिवेणी संगम बन जाता है। ये क्या हैं तीनों ?

पहला है आस्तिकता। आस्तिकता का अर्थ है–ईश्वर का विश्वास। भजन–पूजन तो कई आदमी कर लेते हैं, पर ईश्वर–विश्वास का अर्थ यह है कि सर्वत्र जो भगवान समाया हुआ है, उसके संबंध में यह दृष्टि रखें कि उसका न्याय का पक्ष, कर्म का फल देने वाला पक्ष इतना समर्थ है कि उसका कोई बीच–बचाव नहीं हो सकता। भगवान सर्वव्यापी है, सर्वत्र है, सबको देखता है, अगर यह विश्वास हमारे भीतर हो तो हमारे लिए पाप कर्म करना संभव नहीं होगा। हम हर जगह भगवान को देखेंगे और समझेंगे कि उसकी न्याय, निष्पक्षता हमेशा अक्षुण्ण रही है। उससे हम अपने आपका बचाव नहीं कर सकते। इसलिए आस्तिक का, ईश्वर विश्वासी का पहला क्रिया–कलाप यह होना चाहिए कि हमको कर्मफल मिलेगा, इसलिए हम भगवान से डरें। जो भगवान से डरता है उसको संसार में और किसी से डरने की जरूरत नहीं होती। आस्तिकता, चरित्रनिष्ठा और समाजनिष्ठा का मूल है। आदमी इतना धूर्त है कि वह सरकार को

झुठला सकता है, कानूनों को झुठला सकता है, लेकिन अगर ईश्वर का विश्वास उसके अंत:करण में जमा हुआ है तो वह बराबर ध्यान रखेगा। हाथी के ऊपर अंकुश जैसे लगा रहता है, आस्तिकता का अंकुश हर आदमी को ईमानदार बनने के लिए, अच्छा बनने के लिए प्रेरणा करता है, प्रकाश देता है।

ईश्वर की उपासना का अर्थ है–जैसा ईश्वर महान है वैसे ही महान बनने के लिए हम कोशिश करें। हम अपने आप को भगवान में मिलाएँ। यह विराट विश्व भगवान का रूप है और हम इसकी सेवा करें, सहायता करें और इस विश्व उद्यान को समुन्नत बनाने की कोशिश करें, क्योंकि हर जगह भगवान समाया हुआ है। सर्वत्र भगवान विद्यमान है यह भावना रखने से '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' की भावना मन में पैदा होती है । गंगा जिस तरीके से अपना समर्पण करने के लिए समुद्र की ओर चल पड़ती है, आस्तिक व्यक्ति, ईश्वर का विश्वासी व्यक्ति भी अपने आप को भगवान में समर्पित करने के लिए

चल पड़ता है। इसका अर्थ यह हुआ कि भगवान की इच्छाएँ मुख्य हो जाती हैं। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाएँ, व्यक्तिगत कामनाएँ भगवान की भक्ति समाप्त कराती हैं और यह सिखाती हैं कि ईश्वर के संदेश, ईश्वर की आज्ञाएँ ही हमारे लिए सब कुछ होनी चाहिए। हमें अपनी इच्छा भगवान पर थोपने की अपेक्षा, भगवान की इच्छा को अपने जीवन में धारण करना चाहिए। आस्तिकता के ये बीज हमारे अंदर जमे हुए हों, तो जिस तरीके से वृक्ष से लिपटकर बेल उतनी ही ऊँची हो जाती है जितना कि ऊँचा वृक्ष है। उसी प्रकार से हम भगवान की ऊँचाई के बराबर ऊँचे चढ़ सकते हैं। जिस तरीके से पतंग अपनी डोरी बच्चे के हाथ में थमाकर आसमान में ऊँचे उड़ती चली जाती है। जिस तरीके से कठपुतली के धागे बाजीगर के हाथ में बँधे रहने से कठपुतली अच्छे से अच्छा नाच-तमाशा दिखाती है। उसी तरीके से ईश्वर का विश्वास, ईश्वर की आस्था अगर हम स्वीकार करें, हृदयंगम करें और अपने जीवन की

दिशाधाराएँ भगवान के हाथ में सौंप दें अर्थात भगवान के निर्देशों को ही अपनी आकांक्षाएँ मान लें तो हमारा उच्चस्तरीय जीवन बन सकता है और हम इस लोक में शांति और परलोक में सद्गति प्राप्त करने के अधिकारी बन सकते हैं।

आस्तिकता गायत्री मंत्र की शिक्षा का पहला वाला चरण है। इसका दूसरा वाला चरण है आध्यात्मिकता। अध्यात्मिकता का अर्थ होता है- आत्मावलंबन, अपने आप को जानना, आत्मबोध। '**आत्माऽवारे ज्ञातव्य**' अर्थात अपने आप को जानना। अपने आप को न जानने से हम बाहर-बाहर भटकते रहते हैं। कई अच्छी आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए, अपने दु:खों का कारण बाहर तलाश करते फिरते रहते हैं। जानते नहीं कि हमारी मन:स्थिति के कारण ही हमारी परिस्थितियाँ उत्पन्न होती हैं। अगर हम यह जान पाएँ, तब फिर अपने आप को सुधारने के लिए कोशिश करें। स्वर्ग और नरक हमारे ही भीतर हैं। हम अपने ही भीतर स्वर्ग दबाए हुए हैं अपने ही

भीतर नरक दबाए हुए हैं। हमारी मन:स्थिति के आधार पर ही परिस्थितियाँ बनती हैं। कस्तूरी का हिरण चारों तरफ खुशबू की तलाश करता फिरता था, लेकिन जब उसको पता चला कि वह तो नाभि में ही है, तब उसने इधर-उधर भटकना त्याग दिया और अपने भीतर ही ढूँढ़ने लगा। फूल जब खिलता है तब भौंरे आते ही हैं, तितलियाँ आती हैं। बादल बरसते तो हैं लेकिन जिसके आँगन में जितना पात्र होता है, उतना ही पानी देकर के जाते हैं। चट्टानों के ऊपर बादल बरसते रहते हैं, लेकिन घास का एक तिनका भी पैदा नहीं होता। छात्रवृत्ति उन्हीं को मिलती है जो अच्छे नंबर से पास होते हैं। संसार में सौंदर्य तो बहुत हैं,पर हमारी आँख न हो तो उसका क्या मतलब? संसार में संगीत गायन तो बहुत हैं, शब्द बहुत हैं, पर हमारे कान न हों, तो उन शब्दों का क्या मतलब? संसार में ज्ञान-विज्ञान तो बहुत हैं, पर हमारा मस्तिष्क न हो तो उसका क्या मतलब ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो अपनी सहायता आप करते हैं। इसलिए

आध्यात्मिकता का संदेश यह है कि हर आदमी को अपने आप को देखना, समझना, सुधारने के लिए भरपूर प्रयत्न करना चाहिए। अपने आपको हम जितना सुधार लेते हैं, उतनी ही परिस्थितियाँ हमारे अनुकूल बनती चली जाती हैं। यह सिद्धांत गायत्री मंत्र का दूसरा वाला चरण है।

तीसरा वाला चरण गायत्री मंत्र का है धार्मिकता। धार्मिकता का अर्थ होता है–कर्त्तव्यपरायणता, कर्त्तव्यों का पालन। कर्तृत्व, कर्म और धर्म लगभग एक ही चीज हैं। मनुष्य में और पशु में सिर्फ इतना ही अंतर है कि पशु किसी मर्यादा से बँधा हुआ नहीं है। मनुष्य के ऊपर हजारों मर्यादाएँ और नैतिक नियम बाँधे गए हैं और जिम्मेदारियाँ लादी गई हैं। जिम्मेदारियों को और कर्त्तव्यों को पूरा करना मनुष्य का कर्त्तव्य है। शरीर के प्रति हमारा कर्त्तव्य है कि इसको हम नीरोग रखें। मस्तिष्क के प्रति हमारा कर्त्तव्य है कि इसमें अवांछनीय विचारों को न आने दें। परिवार के प्रति हमारा कर्त्तव्य है कि उनको सद्‌गुणी बनाएँ। देश,

धर्म, समाज और संस्कृति के प्रति हमारा कर्त्तव्य है कि उन्हें भी समुन्नत बनाने के लिए भरपूर ध्यान रखें। लोभ और मोह के पास से अपने आप को छुड़ा करके अपनी जीवात्मा का उद्धार करना, यह भी हमारा कर्त्तव्य है और भगवान ने जिस काम के लिए हमको इस संसार में भेजा है, जिस काम के लिए मनुष्य योनि में जन्म दिया है, उस काम को पूरा करना भी हमारा कर्त्तव्य है। इन सारे के सारे कर्त्तव्यों को अगर हम ठीक तरीके से पूरा न कर सके तो हम धार्मिक कैसे कहला सकेंगे ?

धार्मिकता का अर्थ होता है–कर्त्तव्यों का पालना। हमने सारे जीवन में गायत्री मंत्र के बारे में जितना भी विचार किया, शास्त्रों को पढ़ा, सत्संग किया, ङ्खचतन–मनन किया, उसका सारांश यह निकला कि बहुत सारा विस्तार ज्ञान का है, बहुत सारा विस्तार धर्म और अध्यात्म का है, लेकिन इसके सार में तीन चीजें समाई हुई हैं–(१) आस्तिकता अर्थात ईश्वर का विश्वास, (२) आध्यात्मिकता अर्थात

स्वावलंबन, आत्मबोध और अपने आप को परिष्कृत करना, अपनी जिम्मेदारियों को स्वीकार करना और (३) धार्मिकता अर्थात कर्त्तव्यपरायणता। कर्त्तव्य-परायण, स्वावलंबी और ईश्वरपरायण कोई भी व्यक्ति गायत्री मंत्र का उपासक कहा जा सकता है और गायत्री मंत्र के ज्ञानपक्ष के द्वारा जो शांति और सद्गति मिलनी चाहिए उसका अधिकारी बन सकता है। हमारे जीवन के यही निष्कर्ष हैं विज्ञान पक्ष में तीन धाराएँ और ज्ञानपक्ष में तीन धाराएँ, इनको जो कोई प्राप्त कर सकता हो, गायत्री मंत्र की कृपा से निहाल बन सकता है और ऊँची से ऊँची स्थिति प्राप्त करके इसी लोक में स्वर्ग और मुक्ति का अधिकारी बन सकता है। ऐसा हमारा अनुभव, ऐसा हमारा विचार और ऐसा हमारा विश्वास है।

ॐ शांतिः

आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता

हलवाई की दुकान पर अनेक मिठाइयाँ रखी रहती हैं, पर विश्लेषण करने पर उनमें तीन ही वस्तुएँ घुली-मिली दिखाई पड़ती हैं। एक शक्कर, दूसरा दूध, तीसरा अन्न। यह बनाने वाले की कुशलता है कि वह उन्हें उलट-पुलटकर अनेक रूपों में और अनेक स्वादों वाली बना देता है।

तत्त्वज्ञान की दार्शनिक विवेचनाओं में ईश्वर, जीव, प्रकृति की विवेचना होती रहती है। मनीषियों में भक्तियोग, ज्ञानयोग एवं कर्मयोग को आत्मिक प्रगति का आधार निरूपित किया जाता है। इन्हीं विभिन्न प्रतिपादन शैलियों का यदि एकीकरण किया जाए तो वे प्रकारांतर से उन्हीं मूल प्रतिपादनों में समा जाती हैं, जो अध्यात्म के त्रिवर्ग प्रतिपादनों में आधारभूत माने जाते हैं। तत्त्वज्ञानरूपी समुद्र मंथन के इस नवनीत को आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता के रूप में जाना जाता है। यह मानवी सत्ता के तीन कलेवर हैं–स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर तथा इन्हें काया,

मानस एवं अंतःकरण भी कहते हैं। इन तीनों के अभ्युदय हेतु सम्मिलित प्रयत्न एक साथ करने पड़ते हैं। वे मिले-जुले रूप में विकसित होते हैं। ऐसा नहीं होता कि एक ही को पूरा कर लेने पर दूसरे को हाथ में लिया जाए। जीवन निर्वाह के लिए अन्न, जल, वायु की व्यवस्था जुटानी पड़ती है और वह साथ-साथ प्रयुक्त होती रहती है। यह बात आत्मिक प्रगति के त्रिविध आधारों के संबंध में भी है।

आस्तिकता का अर्थ है-ईश्वर विश्वास। इसे अंतराल की गहराई में जमाने के लिए भक्ति-भाव का आश्रय लेना पड़ता है। यह विश्वास मनोकामना पूरी करने या प्रकट होकर दर्शन देने जैसे बचकाने बालकौतुक के लिए नहीं, वरन सत्प्रवृत्तियों के समन्वित समुच्चय की सघन आस्थाओं के रूप में अपना लिए जाने पर संपन्न होता है। ईश्वर के प्रति समर्पण, विसर्जन, विलय का तात्पर्य है उत्कृष्टता के साथ अपने आपको सघन रूप से जोड़ लेना। कठपुतली की तरह अंतरात्मारूपी बाजीगर के इशारे

पर अपने अंतरंग और बहिरंग जीवन को ढालना। अपने ज्ञान-कर्म को इसी निमित्त नियोजित किए रहना। ईश्वर व्यक्ति विशेष की तरह शरीरधारी नहीं है जिसे उपहार-मनुहार द्वारा अपनी ओर आकर्षित किया जा सके और उससे मनमरजी के क्रियाकृत्य कराए जा सकें। समस्त ऋषि नियम-अनुशासन के परिपालन से ही गतिशील रहकर अपना अस्तित्व बनाए हुए हैं। यह अनुशासन ईश्वर ने अपने ऊपर भी स्वेच्छापूर्वक ओढ़ा हुआ है। वह अपनी मनमरजी से या भक्त की मरजी से स्वेच्छाचार बरतने लगे तो समझना चाहिए बेबूझ राजा की शासन-परिधि अंधेर नगरी बने बिना न रहेगी। जहाँ सर्वत्र अराजकता ही दृष्टिगोचर होगी।

ईश्वर की सत्ता और महत्ता पर विश्वास करने का अर्थ है-उत्कृष्टता के साथ जुड़ने और सत्परिणामों पर, सद्गति पर, सर्वतोमुखी प्रगति पर विश्वास करना। आदर्शवादिता अपनाने पर इस प्रकार की परिणति सुनिश्चित रहती है, किंतु कभी-कभी उसकी

उपलब्धि में देर-सबेर होती देखी जाती है। ऐसे अवसरों पर ईश्वरविश्वासी विचलित नहीं होते। धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करते हैं और विश्वास बनाए रहते हैं। दिव्य सत्ता के साथ भक्त जितनी सघनता के साथ जुड़ेगा, उसके अनुशासन-अनुबंधों का जितनी ईमानदारी और गहराई के साथ पालन करेगा, उतना ही उसका कल्याण होगा। आस्तिक न तो याचना करता है और न अपनी पात्रता से अधिक पाने की अपेक्षा ही करता है। उसकी कामना भावना के रूप में विकसित होती है। भाव-संवेदना फलित होती है तो आदर्शों के प्रति आस्थावान बनाती है। तनिक सा दबाव या प्रलोभन आने पर फिसल जाने से रोकती है। पवित्र अंत:करण बना लेना ईश्वर के अवतरण के लिए अवरोध समाप्त कर देता है। दुष्प्रवृत्तियों को हटा देने पर उनका स्थान सत्प्रवृत्तियों का समुच्चय ले लेता है। इस स्थिति के परिपक्व होने पर जो आनंद आता है, संतोष होता है, उल्लास उमगता है, उसे ईश्वरप्राप्ति कहा जा सकता है।

विराट ब्रह्म और विशाल परब्रह्म एक ही बात है। सर्वव्यापी परमेश्वर को किसी शरीर विशेष में अवस्थित नहीं देखा जा सकता। वह नियम, शक्ति एवं भावचेतना के रूप में कण-कण में समाहित है। परब्रह्म की यथार्थ सत्ता का यही रूप है, किंतु उसे प्रत्यक्ष देखना हो तो अर्जुन, यशोदा, कौशल्या, काकभुशुंडि की तरह सर्वव्यापी के रूप में देखना चाहिए। उस मान्यता के परिपक्व होते ही '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' और '**वसुधैव कुटुम्बकम्**' की श्रद्धा उभरती है। सेवा साधना और परमार्थपरायणता की दिशा में अग्रसर होना पड़ता है। आस्तिकता कोई भावुकता नहीं है। किसी प्रतिमा की अर्चना भर करते रहने से वह प्रयोजन पूरा नहीं होता। भक्ति-भावना भक्त जन के चिंतन, चरित्र और व्यवहार में उच्चस्तरीय परिवर्तन प्रस्तुत करती है। यह मनुष्य को देव स्तर का बना देने वाला कायाकल्प ही भगवत् भक्ति का यथार्थ स्वरूप है।

अध्यात्म का दूसरा चरण है आध्यात्मिकता। आध्यात्मिकता का अर्थ है—आत्मावलंबन। बहिरंग परिस्थितियों का मूलभूत कारण अपनी मन:स्थिति को मानना। आत्मसत्ता की गरिमा, महिमा और क्षमता को अनुभव करना। दूसरों से संपर्क रखने, आदान-प्रदान का क्रम चलाते रहने में हर्ज नहीं, पर विश्वास रखना चाहिए कि उत्थान-पतन की परिपूर्ण जिम्मेदारी अपनी ही है। अकेले ही आए थे, अकेले ही जाना है। इस तथ्य के साथ इतना और जोड़ना चाहिए कि एकाकी निश्चय करना और संकल्प को पूरा करने के लिए एकाकी ही कटिबद्ध एवं अग्रसर होना है। उत्कृष्टता का मार्ग ही ऐसा है, जिस पर चलने के लिए प्रोत्साहन देने वाले, मार्ग दिखाने और सहयोग देने वाले प्राय: दूसरे लोग नहीं ही मिलते हैं। लोकमानस संकीर्ण स्वार्थपरता से भरा है। लोगों की मान्यता, विचारणा और क्रिया-प्रतिक्रिया अधोगामी प्रवाह में ही बहती रहती है। उसका परामर्श मानने, अनुकरण करने पर तो व्यामोह के

जाल-जंजाल में ही जकड़े रहा जा सकता है। पक्षी अपने पंखों के सहारे आसमान में उड़ते हैं। उन्हें न कोई मार्गदर्शन देता है और न सहयोग देता है। शालीनता, सज्जनता, उदारता और पुण्य-परमार्थ का मार्ग भी ऐसा है जिस पर किसी प्रशिक्षक या सहयोगी की आशा नहीं रखनी चाहिए। इनमें अपना विवेक, अपना संयम, अपना संकल्प एवं अपना साहस ही काम देता है। प्रामाणिकता और शालीनता की कसौटी पर कस लेने के उपरांत ही अन्य लोग आदर करते, समर्थन करते और सहयोग देते देखे गए हैं अन्यथा गिरते को अधिक जोर का धक्का देकर गहरे गर्त में गिराने वाले तथाकथित मित्रों की ही सर्वत्र भरमार पाई जाती है। गुरुत्वाकर्षण की तरह पतन का प्रभाव एवं वातावरण ही सब ओर छाया रहता है। इस दबाव से उभरना और अंतरात्मा की उत्कृष्ट प्रेरणाओं का अनुगमन कर सकना अपने बलबूते ही बन पड़ता है। गीता के परामर्शानुसार अपना उद्धार आप ही करना पड़ता है। अवसाद से

अपने को बचा लेने के लिए प्रचंड साहस का परिचय स्वयं ही देना पड़ता है। मनुष्य स्वयं ही अपना शत्रु और मित्र है। जिसने आत्मावलंबन अपनाया और अपने पैरों के बलबूते अपने मार्ग पर एकाकी चल पड़ा, वही मंजिल तक पहुँचता है। रास्ते में चलने वाले तो हर मार्ग पर मिल जाते हैं। जब पतन मार्ग पर अनेकों साथी मिल जाते हैं तो कोई कारण नहीं कि ऊँचा उठाने और आगे बढ़ने के प्रयास में कोई साथ न दे। संसार में बहुत कुछ है, पर उसे खींच बुलाने और हजम करने के लिए तो अपनी निज की चुंबकीय क्षमता ही काम देती है। आँख न हो तो संसार के समस्त दृश्य समाप्त, कान न हों तो संसार-भर के शब्दों का अंत, अपना मस्तिष्क काम न दे तो समस्त संसार पागल। अपना दृष्टिकोण रंगीन चश्मे की तरह किसी सनक से सना हुआ हो तो हर वस्तु उसी रंग में रँगी हुई दिखाई देगी। इसीलिए आत्मनिरीक्षण, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्मविकास की प्रक्रिया अपनाते

हुए साधक को आत्मावलंबन अपनाना चाहिए। एकाकी चल सकने का साहस जुटाना चाहिए। यही आध्यात्मिकता है, जिसे अध्यात्म का दूसरा चरण जाना-माना जाता है।

तीसरा चरण है-धार्मिकता। धार्मिकता का अर्थ है-कर्त्तव्यपरायणता। नीतिनिष्ठा और उदार-सेवा साधना के इर्द-गिर्द ही धर्म की धुरी घूमती है। उसके अविच्छिन्न अंग हैं-आत्मसंयम और परमार्थ के निमित्त बढ़े-चढ़े संकल्प साहस का प्रदर्शन।

उच्छृंखलता पशु-प्रवृत्ति की परिचायक है। स्वेच्छाचार कीट-पंतगों को ही शोभा देता है। अपराध-अनाचारों में संलग्न रहने वाले शैतान की औलाद कहे जाते हैं। मनुष्य का स्तर इससे ऊँचा है। उसकी गरिमा नीतिनिष्ठा और शालीनता पर टिकी हुई है। इसको कर्त्तव्यपरायणता भी कहते हैं। जिम्मेदारियों का निर्वाह भी।

शरीर को स्वस्थ रखना, मन को संतुलित बनाना, उसे मनोविकारों से बचाना, अर्थोपार्जन में

ईमानदारी बरतना, मिल-बाँटकर खाना, हँसते-हँसाते जीना, गिरतों को उठाना, उठों को बढ़ाना जैसे अनेक दायित्व निजी जीवन के साथ जुड़े हुए हैं। विशेषतया सत्प्रवृत्तियों का संवर्द्धन और दुष्प्रवृत्तियों का उन्मूलन, इन दोनों प्रयासों को हाथ में लेने पर नीर-क्षीर विवेक और अनीति के साथ लड़ पड़ने की साहसिकता अपनानी पड़ती है।

कर्त्तव्यपालन की महत्ता बताते हुए उसे प्रकारांतर से ईश्वर-पूजा का ही एक स्वरूप बताया गया है।

❐

मुद्रक-युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)